RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17, अंक-3, जून जुलाई अगस्त 2024

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17 अंक - 3 जून-जुलाई-अगस्त-2024

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

शतपथ कालीन समाज व्यवस्था का ऐतिहासिक विवेचन

डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

शतपथ ब्राह्मण वैदिक युग के उत्तरार्द्ध का अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जो उस समय की धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था को विस्तार से स्पष्ट करता है। 'ब्राह्मण' शब्द का अर्थ ब्रह्म—अर्थात् ज्ञान, मन्त्र और यज्ञ—से सम्बद्ध माना गया है। शतपथ काल में 'ब्राह्मण' ग्रन्थ वही थे जो वैदिक मन्त्रों की व्याख्या करते थे, यज्ञ-विधि का स्वरूप बताते थे और अनुष्ठानों की प्रक्रिया को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करते थे।

इस काल का समाज वैदिक परम्पराओं पर आधारित था और यज्ञ जीवन-व्यवस्था का केन्द्रीय तत्व था। सामाजिक संगठन मुख्यतः चार वर्णों के ढांचे में स्थिर हो रहा था—जहाँ ब्राह्मण ज्ञान और यज्ञ-विधान के संरक्षक माने जाते थे, क्षत्रिय राजनीतिक शक्ति के धारक, वैश्य आर्थिक क्रियाओं से जुड़े, और शूद्र समाज की सेवा-वर्ग के रूप में देखे जाते थे। यद्यपि यह वर्ण-व्यवस्था कठोर जाति-रूप में स्थिर नहीं हुई थी, परन्तु उसके बीज स्पष्ट दिखाई देते हैं।

शतपथ ब्राह्मण में वर्णित यज्ञीय कर्मकाण्ड न केवल धार्मिक क्रिया थे, बल्कि सामाजिक अनुशासन, आर्थिक गतिविधि तथा राजसत्ता की वैधता के आधार भी थे। राजा की प्रतिष्ठा, कृषि की सफलता, वर्षा, स्वास्थ्य—सब कुछ यज्ञ के प्रभाव से जोड़ा जाता था। इस प्रकार धर्म, राजनीति और अर्थ तीनों ही क्षेत्रों में यज्ञ तथा ब्राह्मणीय ज्ञान का प्रभुत्व स्थापित था।

मेदिनीकोश में 'ब्राह्मण' शब्द को नपुंसकलिंग माना गया है और उसे वेद के उस भाग का सूचक बताता है जो मन्त्रों की व्याख्या एवं यज्ञ-विधान से सम्बद्ध होता है—अर्थात् 'ब्राह्मणं ब्रह्मसंघाते वेदभागे नपुंसकम्'। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक साहित्य में 'ब्राह्मण' शब्द का प्रयोग प्रायः ग्रन्थ-रूप में ही किया गया है। पाणिनि की अष्टाध्यायी (3/4/36), शतपथ ब्राह्मण (4/6/9/20), ऐतरेय ब्राह्मण (6/25, 8/2) तथा तैत्तिरीय संहिता (3/7/1/1) में 'ब्राह्मण' इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, अर्थात् एक ऐसे ग्रन्थ के रूप में जो वैदिक मन्त्रों के अभिप्राय को स्पष्ट करे और यज्ञों की विधि तथा अनुष्ठान की प्रक्रिया को समझाए।

इस प्रकार 'ब्राह्मण' उन व्याख्यात्मक ग्रन्थों का नाम है जो ब्रह्म—अर्थात् मंत्र, यज्ञ और उनके गूढ़ अर्थ—की व्याख्या करते हैं। ये ग्रन्थ वैदिक परम्परा में ज्ञान, अनुष्ठान और सामाजिक-धार्मिक व्यवस्था के मध्य सेतु का कार्य करते हैं और इसी दृष्टि से शतपथ कालीन समाज को समझने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

ब्राह्मण-ग्रन्थों का गहन विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि ये केवल यज्ञ-विधि बताने वाले ग्रन्थ नहीं हैं, बल्कि यज्ञ की वैज्ञानिक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक सभी स्तरों पर व्यापक व्याख्या करने वाले विशाल ज्ञान-भण्डार हैं। इनमें यज्ञ के स्वरूप को भौतिक प्रक्रियाओं, प्रकृति के नियमों, मानवीय व्यवहार, दैविक शक्तियों और ब्रह्म के दार्शनिक अर्थ से जोड़ा गया है। इसी कारण ये ग्रन्थ वैदिक संस्कृति के एक महनीय विश्वकोष के रूप में सामने आते हैं, जिनमें उस समय के वैज्ञानिक विचार, धार्मिक मान्यताएँ, सामाजिक संरचना और आध्यात्मिक चिंतन का समन्वित स्वरूप सुरक्षित है।

पूर्वमीमांसा सूत्रों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वैदिक साहित्य में मन्त्रों को छोड़कर जो शेष भाग है, वही ब्राह्मण कहलाता है। पूर्वमीमांसा सूत्र में यह स्पष्ट किया गया है कि मंत्रों के अतिरिक्त वैदिक ग्रन्थों का वह वर्ग, जो यज्ञ की प्रक्रिया, उसके प्रयोजन, अनुष्ठान और उसके पीछे निहित तत्त्वों को स्पष्ट करे, उसे ब्राह्मण कहा जाता है।

आपस्तम्ब भी ब्राह्मण-ग्रन्थों की यही भूमिका निर्धारित करते हुए बताते हैं कि ये ग्रन्थ याज्ञिक कर्मकाण्डों के व्यवहार, उनकी विधि, क्रम, प्रयोजन और अर्थ की व्याख्या करते हैं। अतः ब्राह्मण साहित्य यज्ञ-संस्कृति की संपूर्ण सैद्धांतिक और प्रायोगिक परम्परा का आधार बनकर वैदिक धर्म की कार्यात्मक रूपरेखा प्रस्तुत करता है।

शबर-भाष्य में ब्राह्मण-ग्रन्थों की प्रकृति को अत्यंत व्यवस्थित ढंग से समझाते हुए यह बताया गया है कि ब्राह्मण साहित्य दस प्रकार की विषय-वस्तुओं को समाहित करता है। शबरस्वामी द्वारा उद्धृत श्लोक—

''हेतुनिर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः।

परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणकल्पना।

अपमान् दर्शते तु विधयो ब्राह्मणस्य तु।।''

स्पष्ट करता है कि ब्राह्मण-ग्रन्थ केवल यज्ञ-विधि ही नहीं बताते, बल्कि यज्ञ और धर्म से सम्बद्ध व्यापक दार्शनिक तथा तर्कपूर्ण विषयों को भी समझाते हैं। इनमें कारण-व्याख्या, निन्दा-स्तुति, संशय-समाधान, विधि-नियमन, प्रक्रियाएँ, प्राचीन परम्पराएँ, सीमाएँ, कल्पनाएँ तथा प्रतिमान सभी सम्मिलित हैं।

इस प्रकार शबर-भाष्य की दृष्टि से ब्राह्मण साहित्य वैदिक ज्ञान का एक विस्तृत दिग्दर्शन है, जिसमें अनुष्ठान, तत्वचिन्तन, तर्क, परम्परा और व्यवहार—सभी का समन्वय मिलता है।

ब्राह्मण-साहित्य की परम्परा अत्यन्त व्यापक और समृद्ध थी, किन्तु समय के प्रवाह में इसके अनेक ग्रन्थ नष्ट हो चुके हैं। आज केवल उनके नाम, अंश या उद्धरण ही कुछ श्रौत-ग्रन्थों, स्मृतियों अथवा बाद के वैदिक ग्रन्थों में मिलते हैं। जो ब्राह्मण-ग्रन्थ सुरक्षित रह गए हैं, वे प्रत्येक वेद की शाखाओं के अनुरूप वैदिक ज्ञान की अलग-अलग परम्पराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

ऋग्वेद की परम्परा में ऐतरेय ब्राह्मण और शांखायन ब्राह्मण समाज, यज्ञ-विधि और वैदिक देवी-देवताओं के रूपों को समझाते हैं। यजुर्वेद में शुक्ल यजुर्वेदीय ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण यज्ञ

की विस्तृत प्रक्रियाओं, दार्शनिक व्याख्याओं और राजसूय-अश्वमेध जैसे महायज्ञों की पद्धतियों का वर्णन करते हैं। सामवेद की शाखाओं में ताण्ड्य ब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण और जैमिनीय ब्राह्मण यज्ञीय-गान, सामों के प्रयोग और उनकी प्रतीकात्मक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

अथर्ववेद का अपना ब्राह्मण उपलब्ध नहीं है, परन्तु इसके अनेक याज्ञिक संकेत गौपथ ब्राह्मण और अन्य ग्रन्थों में संरक्षित हैं। इस प्रकार वर्तमान में उपलब्ध ब्राह्मण-ग्रन्थ वैदिक परम्परा के विशाल मूल साहित्य का मात्र एक अंश हैं, किन्तु यज्ञ-ज्ञान, सामाजिक संरचना और आध्यात्मिक चिन्तन को समझने के लिए ये अमूल्य स्रोत बने हुए हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'ऋग्वेद भाष्य-भूमिका' में ब्राह्मण-ग्रन्थों की परम्परा पर विचार करते हुए यह बताया है कि इन ग्रन्थों का प्रवचन प्राचीन काल में ब्रह्मा से आरम्भ होकर विविध वैदिक ऋषियों—याज्ञवल्क्य, वात्स्यायन और जैमिनि—तक सतत रूप से चलता रहा। उनकी दृष्टि में ब्राह्मण-ग्रन्थ केवल यज्ञ-विधि की संहिताएँ नहीं, बल्कि वैदिक ज्ञान की व्याख्या का जीवित प्रवाह थे, जिन्हें गुरु-शिष्य परम्परा के श्रेष्ठ आचार्यों ने सुरक्षित रखा।

स्वामी दयानन्द के अन्य लेखों में यह स्पष्ट होता है कि वे 'जैमिनि' को भगवान् व्यास का शिष्य मानते हैं, और इस आधार पर वे याज्ञवल्क्य, वात्स्यायन तथा जैमिनि को लगभग एक ही युग या परम्परा के साथी आचार्य के रूप में देखते हैं। उनका यह विचार वैदिक स्मृतियों में वर्णित उस परम्परा की ओर संकेत करता है जिसमें वैदिक साहित्य की व्याख्या और यज्ञ-विधि की परम्परा निरन्तर एक आचार्य-समूह द्वारा विकसित की जाती रही।

शतपथ ब्राह्मण के वर्णनों से स्पष्ट होता है कि उस काल का समाज पूर्णतः पितृसत्तात्मक था। परिवार का मुखिया पिता होता था, और वही परिवार का संरक्षक, निर्णयकर्ता तथा सभी धार्मिक-सामाजिक कार्यों का प्रमुख अधिकारी माना जाता था। उसकी आज्ञा और मार्गदर्शन से ही परिवार का जीवन संचालित होता था। उस समय वैदिक आर्यों में संयुक्त परिवार व्यवस्था का प्रचलन था, जिसमें अनेक पीढ़ियाँ एक साथ रहती थीं। ऐसे संयुक्त परिवार के लिए प्रचलित सामान्य शब्द 'कुल' था, जो केवल रक्त-संबंधों का समूह नहीं, बल्कि एक संगठित सामाजिक इकाई थी, जिसमें सामूहिक जीवन-व्यवस्था, संपत्ति, अनुष्ठान और पारिवारिक दायित्व साझा रूप से निभाए जाते थे।

शतपथकालीन समाज में संयुक्त परिवार की परम्परा अत्यन्त सुदृढ़ थी, और सामान्यतः तीन पीढ़ियाँ एक ही गृह में साथ रहती थीं। हरदत्त वेदालंकार ने हिन्दू परिवार मीमांसा में इसका स्पष्ट संकेत दिया है कि पिता, पितामह और प्रपितामह तक का साथ रहना उस समय की सामान्य रीत थी। शतपथ ब्राह्मण में भी विधि-विधानों के अनेक प्रसंगों पर इन्हीं तीन पीढ़ियों—पिता, पितामह और प्रपितामह—का उल्लेख मिलता है, जिससे यह पारिवारिक ढाँचा प्रमाणित होता है।

'तोकं-तनय' जैसे शब्द-प्रयोग बेटों और पोतों के लिए प्रयुक्त होते हैं, जो यह दर्शाते हैं कि परिवार की मुख्य सक्रिय इकाई भी तीन पीढ़ियों के संबंधों पर आधारित थी। 'कुल' जैसी संज्ञा ऐसे ही बड़े संयुक्त परिवारों के लिए प्रयुक्त होती थी, और यह स्पष्ट है कि ये परिवार आकार में विस्तृत होते थे। बाद के गृह्यसूत्र—जैसे गोभिल और पारस्कर भी इसी प्रकार के बड़े परिवारों का उल्लेख

करते हैं, जिससे यह परम्परा दीर्घकाल तक बनी रहने का प्रमाण मिलता है।

यद्यपि कात्यायन श्रौतसूत्र सोमयज्ञ में दस पीढ़ियों तक के पितरों का स्मरण करने का विधान करता है, परन्तु शतपथ ब्राह्मण में यजमान के पिता, पितामह और प्रपितामह के बाद शेष पितरों को सामूहिक रूप से 'पितर' कहा गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय दैनिक जीवन की सामाजिक इकाई और धार्मिक अनुष्ठानों का व्यावहारिक आधार तीन पीढ़ियों वाला संयुक्त परिवार ही था।

शतपथकालीन परिवार-जीवन में पिता-पुत्र और माता-पुत्र के सम्बन्धों का स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट और भावनात्मक था। पिता को परिवार का मुखिया मानकर उसके प्रति सम्मान और अनुशासन दोनों अपेक्षित थे। पिता पुत्र का हितचिन्तक, मार्गदर्शक तथा अनुशासनकर्ता होता था। यदि पुत्र अनुचित कर्म—जैसे जुआ आदि—की ओर प्रवृत्त होता, तो पिता उसे ताड़ना भी देता था। (शतपथ ब्राह्मण 5, 3, 3, 3)

शतपथ ब्राह्मण में ऋजाश्व को उसके पिता द्वारा अंधा कर देने का प्रसंग अवश्य मिलता है, जो पिता की कठोरता का अत्यन्त अपवादात्मक उदाहरण है; किन्तु यह घटना सामान्य पारिवारिक व्यवहार का प्रतीक नहीं थी। सामान्यतः पिता-पुत्र के सम्बन्ध सौहार्द, स्नेह और उत्तरदायित्व के भावों से ओत-प्रोत थे।

माता-पुत्र का सम्बन्ध और भी कोमल और भावुक माना गया है। शतपथ में स्पष्ट कहा गया है कि माता पुत्र को हिंसित नहीं करती और न ही पुत्र माता को, जो इस संबंध की पवित्रता और परस्पर करुणा का संकेत देता है। माता परिवार में स्नेह, सुरक्षा और भावनात्मक आधार की प्रतीक थी, और पुत्र के प्रति उसका प्रेम अविचल माना जाता था। (शतपथ ब्राह्मण, 5, 4, 3, 20) (शतपथ ब्राह्मण-एक सांस्कृति अध्ययन, पृ. 120)

शतपथ ब्राह्मण में पारिवारिक संबंधों के लिए प्रयुक्त शब्दावली उस काल के सामाजिक भावों और सम्बन्धों की प्रकृति को अत्यन्त प्रभावी ढंग से प्रकट करती है। पुत्र को वहाँ 'वीर' और 'पुत्र' दोनों कहा गया है— 'पुत्रो वै वीरः' जिससे यह स्पष्ट होता है कि पुत्र को परिवार की शक्ति, वंश-वृद्धि और कर्म-योग्यता का प्रतीक माना जाता था। (शतपथ ब्राह्मण, 3, 3, 1, 12) स्नेहभरे संबोधन के लिए 'पुत्रक' शब्द का प्रयोग मिलता है, जो वात्सल्य और कोमल भावनाओं को सूचित करता है।

पुत्री के लिए 'दुहिता' शब्द प्रचलित था, जिसका मूलार्थ दुग्ध दोहने योग्य करने वाली कन्या से जुड़ा माना जाता है; परंतु शतपथकाल में यह परिवार में पुत्री की स्वीकृत और सम्मानपूर्ण स्थिति को भी दर्शाता है। परिवार के अन्य संबंधों को स्पष्ट करने के लिए भी विशिष्ट शब्द मिलते हैं। पति का बड़ा भाई 'ज्येष्ठ' कहलाता था, जो संयुक्त परिवार में वरिष्ठता, अधिकार और सम्मान का परिचायक था। (शतपथ ब्राह्मण, 11, 5, 3, 8)

'कुल' शब्द का प्रयोग ब्राह्मण-ग्रन्थों में व्यवस्थित रूप से मिलता है, किन्तु उससे पहले वैदिक साहित्य में यह यौगिक रूप में दृष्टिगोचर नहीं होता। (वैदिक इण्डेक्स (हिन्दी), भाग-1, पृ.

189) ब्राह्मण-ग्रन्थों में 'कुल' शब्द मूलत: उस घर या आवास की ओर संकेत करता है जहाँ एक परिवार संयुक्त रूप से निवास करता है। शब्द की अजहल्लक्षणा—अर्थात् घर से उससे संबंधित समूह का अर्थ ग्रहण करना—के आधार पर 'कुल' का अर्थ परिवार हो जाता है। इस प्रकार 'कुल' केवल निवास नहीं, बल्कि एक सजीव सामाजिक इकाई का द्योतक है। (शतपथ ब्राह्मण, 13/8/3/1, अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो बसतिष्कृता। यजुर्वेद, 35/4)

परिवार और कुटुम्ब शतपथकालीन समाज में प्राथमिक और सबसे मौलिक सामाजिक संस्था थे। इनमें पति-पत्नी, माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री आदि सदस्य सम्मिलित होते थे, जिनके बीच रक्त-संबंध, दायित्व और परस्पर निर्भरता का स्वाभाविक बंधन होता था। यह पारिवारिक संरचना न केवल व्यक्ति के जीवन का आधार थी, बल्कि यही समुदाय और समाज की बुनियादी इकाई बनकर उसके आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास को दिशा देती थी।

शतपथ ब्राह्मण में पति-पत्नी के संबंध को अत्यंत सजीव प्रतीक के माध्यम से व्यक्त किया गया है उन्हें एक दाने की दो दालों की भाँति बताया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि दोनों की संयुक्तता ही उन्हें पूर्णता प्रदान करती है। यह दृष्टिकोण उस समय की पारिवारिक व्यवस्था में स्त्री-पुरुष की परस्पर पूरकता, सामंजस्य और संयुक्त उत्तरदायित्व को दर्शाता है।

शतपथकालीन समाज में संयुक्त परिवार परम्परा का विघटन सामान्यत: नहीं मिलता। इसके विपरीत, पारिवारिक जीवन एक स्थायी, संगठित और सामूहिक संरचना के रूप में प्रतिष्ठित दिखाई देता है। परिवार या 'कुल' केवल सामाजिक इकाई ही नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन की वास्तविक आधारशिला था। व्यक्ति का जन्म, संस्कार, पालन-पोषण, विवाह, यज्ञ, दायित्व और अंतत: मृत्यु—सभी अवस्थाएँ परिवार के संरक्षण और सहभागिता में सम्पन्न होती थीं।

माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री—इन सबके समन्वय से परिवार निर्मित होता था, जो व्यक्ति और समाज दोनों के लिए अनिवार्य संस्था थी। हरिदत्त वेदालंकार के विचार में परिवार मानव-जाति के आत्म-संरक्षण, वंश-वृद्धि और जातीय अस्तित्व को बनाए रखने का प्रमुख साधन है।

मनुष्य की विविध आवश्यकताएँ—कामेच्छा की पूर्ति, संतानोत्पत्ति, पालन-पोषण, भावनात्मक सुरक्षा, सामाजिक प्रशिक्षण तथा नैतिक विकास—इन सबका समाधान परिवार के माध्यम से होता था। इसीलिए परिवार संस्था का उद्भव और विकास इसी आधार पर हुआ और शतपथकालीन समाज में यह एक अपरिहार्य एवं सुदृढ़ संगठन के रूप में प्रतिष्ठित रही।

'पत्नी' शब्द की व्युत्पत्ति और शास्त्रीय प्रयोजन से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक समाज में पत्नी केवल गृहस्थ जीवन की सहभागी ही नहीं, बल्कि धर्म, यज्ञ और सामाजिक उत्तरदायित्वों की समकक्ष भागीदार मानी गई है। पत्नी वही है— यज्ञ में पति के साथ भाग ले, यज्ञ-फल की अधिकारिणी हो, और आवश्यक परिस्थितियों में स्वतंत्र रूप से भी यजन-कार्य कर सके।

इसी संयुक्त कर्त्तव्य, धार्मिक सहभागिता और समतुल्य अधिकार के कारण उसे सहधर्मिणी कहा गया, अर्थात् वह जो धर्म के पालन में पति के साथ समान रूप से सहभागी हो। पाणिग्रहण संस्कार में पति उसका हाथ ग्रहण करता है, इसलिए वह पाणिगृहीतिका कहलाती है, जो उनके संयुक्त

जीवन की प्रतिज्ञा का प्रतीक है।

पति-पत्नी के इस घनिष्ठ, पूरक और आध्यात्मिक संबंध के कारण ही वैदिक साहित्य और लोकाचार ने उसे अर्धांगिनी की पदवी दी—अर्थात् वह जो पुरुष का आधा नहीं, बल्कि उसका अनिवार्य अंग है, जिसके बिना गृहस्थाश्रम, यज्ञ, धर्म और सामाजिक जीवन अधूरा माना गया है।

वेदोत्तर ब्राह्मणकाल में विवाह को केवल सामाजिक संस्था नहीं, बल्कि एक पूर्ण यज्ञ माना गया, जिसमें स्त्री की भागीदारी अनिवार्य समझी गई। तैत्तिरीय ब्राह्मण स्पष्ट करता है कि पत्नी के बिना पुरुष का यज्ञ अपूर्ण है, जिससे स्त्री को धार्मिक कर्मों की समान भागीदार और सहधर्मिणी का दर्जा मिलता है। इसी कारण उसे अर्धांगिनी कहा गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में यह भी प्रतिपादित है कि मनुष्य विवाह और सन्तान-प्राप्ति से ही पूर्णता पाता है। इस प्रकार इस युग में स्त्री का स्थान यज्ञ, धर्म, परिवार और सामाजिक संरचना—सभी के मूल में प्रतिष्ठित होता है।

शतपथ ब्राह्मण काल में स्त्रियों को उपनयन, ब्रह्मचर्य तथा वैदिक मन्त्रों के अध्ययन का पूरा अधिकार प्राप्त था, जिससे उनकी धार्मिक और बौद्धिक क्षमता स्पष्ट होती है। गार्गी जैसी विदुषियों की प्रतिष्ठा यह प्रमाणित करती है कि उस समय स्त्रियां दार्शनिक वाद-विवाद में भी उच्च स्थान रखती थीं। केवल धार्मिक शिक्षा ही नहीं, बल्कि व्यावहारिक, व्यावसायिक और ललित कलाओं में भी उनका सक्रिय योगदान था—गायन, वादन और नृत्य को स्त्रियों का स्वाभाविक क्षेत्र माना गया, और सामगान तो विशेषत: उनका कार्य समझा गया। यज्ञ सम्बन्धी कर्तव्यों में भी स्त्रियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी, क्योंकि कई स्थानों पर उद्गाता का कार्य भी स्त्रीयों के सहयोग से पूर्ण होता बताया गया है। इस प्रकार शतपथ ब्राह्मण का युग स्त्री-शिक्षा, स्त्री-प्रतिभा और स्त्री-स्वतंत्र धार्मिक सहभागिता का उन्नत और सशक्त रूप प्रस्तुत करता है।

शतपथ ब्राह्मण और तैत्तिरीय ब्राह्मण के सन्दर्भ में स्त्रियों की भूमिका स्पष्ट रूप से बहुआयामी और महत्त्वपूर्ण दिखाई देती है। यज्ञ में स्त्रियां केवल मन्त्रों का उच्चारण नहीं करती थीं, बल्कि यज्ञ की वेदी निर्माण और अन्य अनुष्ठानिक कार्यों में भी पति का सहयोग देती थीं। शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ-क्षेत्र में पत्नीशाला का उल्लेख यह दर्शाता है कि स्त्रियों के लिए विशेष व्यवस्थाएँ की गई थीं।

तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार पत्नी का उपनयन संस्कार भी अत्यावश्यक था; यदि व्रतोपनयन पहले नहीं हुआ हो तो विवाह के बाद उसे सम्पन्न कर यज्ञ में पति के साथ बैठाना चाहिए। शतपथ ब्राह्मण में भी यह नियम स्पष्ट किया गया है कि स्त्रियां केवल उपनयन संस्कार के पश्चात् ही यज्ञ में प्रवेश पा सकती थीं।

पितृ-ऋण से मुक्ति और धार्मिक पूर्णता के लिए पुत्रोत्पत्ति अनिवार्य मानी गई थी। ऋग्वेद में नव-विवाहिता वधू को पति-गृह जाते समय वीर-पुत्रों की जननी बनने का आशीर्वाद दिया गया। पत्नी पुत्रोत्पत्ति द्वारा पति को पितृ-ऋण से मुक्ति दिलाती और नरक से उसकी रक्षा करती थी। इस कारण प्रत्येक स्त्री का प्रमुख ध्येय विवाह और सन्तानोत्पत्ति माना जाता था, और पुत्रहीन स्त्री को दुर्भाग्यपूर्ण समझा जाता था।

शतपथ ब्राह्मण और तैत्तिरीय ब्राह्मण के आधार पर स्त्रियों की सामाजिक, धार्मिक और

व्यावहारिक भूमिका अत्यंत व्यापक और महत्वपूर्ण दिखाई देती है।

स्त्रियों द्वारा ऊन और सूत की कताई-बुनाई, कपड़े की सिलाई जैसी गृहकार्य-कलाओं में विशेष दक्षता दर्शाई गई है। ये कार्य केवल गृहस्थ जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ही नहीं, बल्कि वैदिक समाज की संस्कृति और आर्थिक गतिविधियों में भी योगदान देने वाले थे।

धार्मिक जीवन में भी पत्नी की भूमिका अनिवार्य मानी गई थी। अश्वमेध, राजसूय, वरुण आग्रह और वाजपेय जैसे प्रमुख यज्ञों में पत्नी की उपस्थिति यज्ञ के आरंभ से अन्त तक आवश्यक थी। यद्यपि ऋग्वेदकाल से यज्ञ में पत्नी को अनिवार्यता मान्यता प्राप्त थी, ऐतरेय ब्राह्मण में यह उल्लेख है कि यदि किसी के पास पत्नी न हो तो भी वह यज्ञ कर सकता है, विशेषतः पितृ-ऋण से मुक्ति हेतु।

शतपथ ब्राह्मण और ऋग्वेद के सन्दर्भ में स्त्रियों की भूमिका बहुआयामी और समाज-निर्माण में निर्णायक दिखाई देती है। सिलाई, कढ़ाई और बुनाई के अतिरिक्त कुछ स्त्रियां कृषि और पशुपालन के कार्यों में भी योगदान करती थीं। शतपथ ब्राह्मण में स्त्री के साथ 'खुरपी' शब्द का उल्लेख यह दर्शाता है कि वे खेतों में अपने पिता या पति के साथ मेहनत करती थीं। ऋग्वेद में अपाला नामक कन्या का उदाहरण मिलता है, जो अपने पिता के कृषि कार्यों में सहयोग करती थी। इसके अतिरिक्त, कई कन्याएं गाय दुहना भी जानती थीं, इसलिए उन्हें 'दुहिता' कहा गया। इस प्रकार स्त्रियों की भूमिका केवल घरेलू या कलात्मक कार्यों तक सीमित नहीं थी, बल्कि वे आर्थिक और कृषि कार्यों में भी सक्रिय भागीदार थीं।

धार्मिक और पारिवारिक दृष्टि से शतपथ ब्राह्मण यह स्पष्ट करता है कि पत्नी पति की आधी (अर्धांगिनी) है। इसलिए व्यक्ति तब तक पूर्ण नहीं होता, जब तक वह विवाह नहीं करता और सन्तानोत्पत्ति द्वारा वंश वृद्धि नहीं करता। यह विचार वैदिक समाज में विवाह और पारिवारिक जीवन की धार्मिक, सामाजिक और व्यक्तिगत पूर्णता का मूल आधार दर्शाता है।

निष्कर्षतः शतपथकालीन समाज पितृसत्तात्मक और संयुक्त परिवार आधारित था, जिसमें पिता परिवार के मुखिया और संरक्षक थे। परिवार तीन पीढ़ियों तक विस्तृत रहता था और माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री का समन्वय इसकी आधारशिला था। पति-पत्नी के संबंध में पत्नी को सहधर्मिणी, पाणिगृहीतिका और अर्धांगिनी माना गया; विवाह और संतानोत्पत्ति पुरुष की धार्मिक, सामाजिक और व्यक्तिगत पूर्णता के लिए आवश्यक थी। स्त्रियों को उपनयन संस्कार और वैदिक मंत्रों का अध्ययन करने का अधिकार था। वे यज्ञ में मन्त्रपाठ, वेदी निर्माण और यज्ञ-संबंधी कार्यों में पति का सहयोग करती थीं। गार्गी जैसी विदुषियों ने दार्शनिक बहसों में पुरुषों को चुनौती दी, जिससे स्त्रियों की बौद्धिक और धार्मिक भूमिका स्पष्ट होती है। साथ ही, स्त्रियों ने कलात्मक और व्यावहारिक कार्यों में भी योगदान दिया—सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, रंगाई, टोकरी निर्माण, बेंत और अन्य छोटे-मोटे तकनीकी कार्य। कृषि और पशुपालन में भी उनका सहयोग होता था।

अतः शतपथकालीन समाज में स्त्रियों का स्थान धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक और आर्थिक सभी क्षेत्रों में अत्यंत महत्वपूर्ण था। परिवार और स्त्रियों का योगदान समाज की स्थिरता, वंशवृद्धि और सांस्कृतिक विकास का मूल आधार था।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *ऋग्वेद, आर.टी.एच. ग्रिफिथ का अनुवाद, बनारस, 1896-97, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, 1942*
2. *अथर्ववेद, सायणभाषयोपेत, एस.सी. पण्डित द्वारा सम्पादित, बम्बई, 1967 तथा स्वाध्याय मण्डल, पारडी (गुजरात), 1938*
3. *ऐतरेय ब्राह्मण, सायण-भाष्य सहित, आनन्दाश्रम पूना, 1931*
4. *तैतरीय संहिता, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत) हरियाणा, 1995*
5. *अमरनाथ राणा, वैदिक साहित्य में अर्थ-पुरुषार्थ, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2000*
6. *डॉ. गजानन शर्मा, प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, रचना प्रकाशन, 45-ए, खुल्दाबाद, इलाहाबाद, 1971*
7. *श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी', आर्य जीवन दर्शन, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, प्रथम संस्करण, 1971*
8. *सुषमा शुक्ला, वैदिक वाङ्मय में नारी, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 201*
9. *गोभिल गृह्यसूत्र, सं. चिन्तामणि एवं भट्टाचार्य, कलकत्ता, 1926*
10. *तैत्तिरीय ब्राह्मण, सायण भाष्य, (सं.) एच.एन. ऑप्टे, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरिज, पूना, 1938*
11. *पारस्कर गृहसूत्र, चौखम्बा, वाराणसी*
12. *शतपथ ब्राह्मण, सायण भाष्य, अच्युत ग्रन्थमाला, वाराणसी, 1974*
13. *डॉ. धीरेन्द्र कुमार सिंह, ब्राह्मण-ग्रन्थों में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति, पैनमैन पब्लिशर्स, दिल्ली, 1993*
14. *सत्यकेतु विद्यालंकार, प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग, श्री सरस्वती सदन, इलाहाबाद, 2020*
15. *वृहदारण्यक उपनिषद, निर्णय सागर संस्करण, बम्बई 1930, गीता प्रेस, गोरखपुर, वि.सं.2012*
16. *बी.सी. पाण्डेय, प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2015*
17. *हरदत्त वेदालंकार, हिन्दू परिवार मीमांसा, चौखम्भा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 1967*